विपश्यना

साधकों का
मासिक प्रेरणा पत्र

बुद्धवर्ष २५३१ | अश्विन पूर्णिमा | ७ अक्टूबर १९८७ | वर्ष १७ | अंक ४

धम्म वाणी

सब्बदानं धम्मदानं जिनाति
सब्बरसं धम्मरसो जिनाति ।
सब्बरतिं धम्मरति जिनाति
तण्हक्खयो सब्बदुक्खं जिनाति ॥
धम्मपद २४/२१

धर्म का दान सब दानों को जीत लेता है।
धर्म का रस सब रसों को जीत लेता है।
धर्म का रति-सुख सब रति-सुखों को जीत लेता है।
तृष्णा का विनाश सारे दुःखों को जीत लेता है।

धन्य विपश्यी !
आदर्श जीवन ! आदर्श मृत्यु !!

८६ वर्ष की पकी उम्र में विपश्यना के विशिष्ट साधक श्री रतिलालभाई मेहता ने ता. २६-८-८७ को सम्यक् समाधि अवस्था में अपने प्राण छोड़े। विपश्यना का जैसा आदर्श जीवन जिया वैसी ही आदर्श मृत्यु पायी।

श्री रतिभाई ३१-१०-७१ को बीकानेर के मोहता भवन में लगे शि.क. ४१ में पहली बार सम्मिलित हुए। यहीं उन्हें जिसकी खोज थी वह राह मिल गयी।

कुछ दिन पूर्व उनकी धर्मपत्नी का रेल-दुर्घटना में देहान्त हुआ था। उनके मन पर इसका बहुत बड़ा क्षोभ था। मानसिक शांति के लिए वे अनेक आश्रमों, उपाश्रयों, मंदिरों, तीर्थों, गुरुओं, संन्यासियों और मुनियों की शरण गए, परन्तु इस भटकन में उन्हें कुछ नहीं मिला। विपश्यना में जो पाना था सब पा लिया। पहले ही शिविर में शील, समाधि, प्रज्ञा के शुद्ध धर्म के प्रति जो श्रद्धा जागी वह दिनोंदिन पुष्ट ही होती गयी। समता और वीतरागता के उपदेश तो बहुत सुने थे, परन्तु उन्हें वस्तुतः इसी जीवन में उपलब्ध कर सकने की सही वैज्ञानिक विधि कहीं नहीं मिली थी। धर्म का सैद्धांतिक पक्ष तो अनेक जगह मिला, पर प्रयोगात्मक पक्ष विपश्यना साधना में ही प्राप्त हुआ। अतः इस पथ पर निष्ठापूर्वक चल पड़े और पग पग आगे बढ़ते ही गए। पीछे मुड़कर नहीं देखा। राजमार्ग छोड़कर अन्य किसी अंधी गली में नहीं भटके।

साधना करते हुए दो वर्ष भी नहीं बीते कि जो कुछ उन्हें प्राप्त हुआ था उससे भावविभोर हो उठे। मन में धर्म संवेग जागा कि मेरे परिवार का प्रत्येक व्यक्ति इस धर्मगंगा में डुबकी लगाकर अपना कल्याण साधे। अपनी संतान को भौतिक सुख-संपदा बांटकर जो प्रसन्नता हुई उससे कहीं अधिक प्रसन्नता इस आध्यात्मिक संपदा को बांटने में मानी। परिणामतः हैदराबाद के कुसुमनगर वाले अपने बंगले और फैक्ट्री में १३-७-७३ को विपश्यना का एक शिविर लगवाया, जिसमें अत्यंत आग्रहपूर्वक अपने परिवार के सभी सदस्यों को आमंत्रित किया। अधिकांश आए। (जो थोड़े बचे वे अगले शिविरों में आए।) परिवार के सभी सदस्य पुण्यशाली थे। अतः जो आया वही लाभान्वित हुआ। सभी वयस्क शिविर में साधना करते रहे — पुरुष भी, महिलाएँ भी, और रतिभाई पासवाले एक अन्य बंगले में उनके बच्चों की देखभाल करते रहे ताकि साधकों को बच्चों की ओर से कोई चिंता न रहे। अपने परिवार को धर्म का अनमोल रस चखाकर रतिभाई की खुशियों का ठिकाना न था।

धर्म का "एहिपस्सिको" पक्ष और प्रबल होने लगा। ऐसा धर्मरस सभी दुखियारे चखें! सबका मंगल हो! सबका कल्याण हो! इगतपुरी में विपश्यना केन्द्र बन रहा है तो दक्षिण के लोगों की सुविधा के लिए एक केन्द्र हैदराबाद में भी हो! यह धर्म संवेग इतना प्रबल हुआ कि अपने परिवार की ढाई एकड़ भूमि दान देकर (जोकि कालान्तर मे ३ एकड़ और बढ़ा दी गयी) धम्मखेत्त में विपश्यना साधना केन्द्र की स्थापना की गई। इसका उद्घाटन धम्मगिरि से भी पूर्व ४-९-७६ को हुआ। जिस खेत में भौतिक वनस्पति उगाई जानेवाली थी अब उसमें धर्म की फसल उगने लगी और धम्मखेत्त में सैकड़ों लोगों को धर्मफल मिला, मिल रहा है और पीढ़ियों तक मिलता ही रहेगा।

साधक जैसे जैसे विपश्यना के विशुद्धि मार्ग पर बढ़ता है और अपने भीतर की कर्म-ग्रंथियाँ उन्मूलित करता है वैसे वैसे औरों के प्रति निर्मल मैत्री अधिकाधिक प्रबल होती जाती है। रतिभाई साधना के लिए धम्मगिरि भी आते रहे। वहाँ उन्होंने देखा कि धर्मचैत्य की छत्रछाया में जो शून्यागार हैं उनमें साधकों को एकाकी

ध्यान का अपूर्व लाभ मिलता है। इसे देखकर रतिभाई के मन में तीव्र धर्म संकल्प जागा। धम्मखेत्त ऐसे साधन से वंचित न रहे। उन्होंने शीघ्र ही वहाँ एक तिमंजिले चैत्य का निर्माण करके दान दिया, जिसमें कि अन्य साधकों के सहयोग से ७४ शून्यागारों की सुविधा बनी।

अन्य साधकों का भला होते देखकर इस मंगल मैत्रीमय साधक का रोम रोम प्रसन्नता से भर उठता था। वह खूब जान गया था कि मेरे धन का इससे अधिक सदुपयोग नहीं हो सकता और जन्म जन्म के दुःखों को काटनेवाली विपश्यना साधना के दान से अधिक किसी दुखियारे की कोई सेवा नहीं हो सकती।

ऐसा मंगलभावी तपस्वी साधक जीवन के अंतिम वर्षों में कैंसर जैसे भयंकर रोग से पीड़ित हुआ। गुदा द्वार से आंतो की ओर बढ़ता हुआ यह कैंसर का रोग लीवर और फेफड़े तक को अपने शिकंजे में जकड़ने लगा। मल त्याग के लिए डाक्टरों ने एक कृत्रिम मार्ग तैयार किया जिसमें से मल एक थैली में रिसता रहे। ऐसी घोर नारकीय यंत्रणा और यह विपश्यी साधक उसे मुस्करा-कर अंतिम समय तक सहता रहा। जब कभी उससे पूछता कि पीड़ा कैसी है ? तो यही उत्तर मिलता — "किसी पूर्व दुष्कर्म की उदीरणा है। समता से देख रहा हूँ। यही तो सिखाया है आपने ! " विपश्यना साधना ऐसे साधक को पाकर धन्य हुई। साधक ऐसी साधना को पाकर धन्य हुआ।

सचमुच कोई बड़ा गंभीर दुष्कर्म जो कि भविष्य में नारकीय जीवन देनेवाला था, अब इस रूप म प्रकट हो रहा था और साधक थोड़े में ही अपना भुगतान चुकाकर उसकी निर्जरा कर रहा था। भगवान ने ठीक ही कहा कि मुट्ठी भर नमक एक कटोरी जल में डाल दिया जाय तो वह पीने लायक न रहे। लेकिन वही मुट्ठी भर नमक विशाल नदी की बहती धारा में डाल दिया जाय तो कोई असर नहीं होता। सच्चे विपश्यी साधक का यही धर्मबल है कि बड़ी से बड़ी नारकीय यंत्रणा भी वह मुस्कराकर झेलता है और अपने पूर्व कर्मों का ऋण चुकाता है।

जीवन के अंतिम दिनों दूर दूर तक देश-विदेश में फैले हुए परिवार के किसी सदस्य से मिलने की कोई आकांक्षा नहीं, आसक्ति नहीं, छटपटाहट नहीं। बार बार यही कहते रहे कि अब सारी माया छूट गयी है। कहीं कोई राग नहीं, द्वेष नहीं। हाँ अत्यंत रुग्ण अवस्था में अविनाश नाम के किसी व्यक्ति को याद किया। जीवन में कभी इस व्यक्ति के कुछ पैसे इनकी ओर रह गए थे जिसे यह चुकाना चाहते थे। यह ऋण अगले जन्म में नहीं ले जाना चाहते थे। पर वह व्यक्ति मिल नहीं रहा था। परिवारवालों ने आश्वासन दिया कि वह जहाँ कहीं मिलेगा, उसके हिस्से का धन अवश्य दे दिया जायेगा। इसके अतिरिक्त अन्य किसी सांसारिक व्यक्ति का स्मरण नहीं हुआ।

रतिभाई को भगवान महावीर की समता और वीतरागता के प्रति असीम श्रद्धा और भक्ति थी। पर थोथे कर्मकांडों, दार्शनिक वाद-विवादों और संकीर्ण सांप्रदायिक मान्यताओं में कहीं उनकी झलक भी न दिखाई दी। विपश्यना के मार्ग पर वीतरागता का जरा भी रस चखने लगा तो धन्यता का अनुभव होने लगा।

मृत्यु के पूर्व किसी ने पूछ लिया, "बापूजी आपकी क्या इच्छा है ?" तो कहा, 'महावीर की समता।' जिस मार्ग पर चलकर उस समता का रस चखा, उसके प्रवर्तक महान कारुणिक भगवान बुद्ध के प्रति अपरिमित श्रद्धा जागी तो कहा, " भगवान बुद्ध का चित्र लाओ।" अनंत मैत्री और करुणाभरी मुस्कान लिए ध्यानावस्थित भगवान बुद्ध के चित्र को इस विपश्यी साधक ने विपश्यना साधना के अनुकूल नमस्कार किया और साधना में ही लगे रहे।

मृत्यु के कुछ घंटे पूर्व अपने कृत्रिम मलद्वार को साफ किया। सारे कपड़े बदले। स्वच्छ कपड़ों में लेटकर थोड़ा सा दूध का आहार लिया और मृत्यु के लगभग डेढ़ घंटे पूर्व ध्यान के लिए बैठने की इच्छा प्रकट की। शरीर बिल्कुल अक्षम हो गया था। बैठने की जरा भी शक्ति नहीं थी फिर भी कुछ औरों के सहारे और कुछ अपने मनोबल से बैठ गए और विपश्यना साधना में लीन हो गए। उन्हें धर्म के दोहे बहुत प्रिय लगते थे। सुनते ही पुलक-रोमांच हो उठता था और साधना तेज हो जाती थी। उस समय भी दोहों की टेप चलवाई। एक ओर टेप चल रही थी, एक ओर साधक की विपश्यना साधना चल रही थी। लगभग डेढ़ घंटे में टेप पूरी हुई। मंगल मैत्री के दोहों के बाद तीन बार 'भवतु सब्ब मंगलं' का उच्चार हुआ। जैसे ही तीसरी बार यह मंगल उच्चार पूरा हुआ वैसे ही सजग ध्यानस्थ साधक ने अपनी अंतिम सांस छोड़ी। साधक को उत्तम देवगति प्राप्त हुई।

मृत्यु के क्षण आँखें खुली तो खुली रह गयीं। सिर, हथेली और पगथली में विपश्यना से जो उष्णता जागी वह मृत्यु के बाद घंटों बनी रही। चेहरा विपश्यना के मंगल भावों से उद्दीप्त हो उठा। धन्य विपश्यना, धन्य विपश्यी साधक !

रतिलालभाई ने विपश्यना साधना द्वारा लोगों के लिए जीवन जीने की कला का तो एक अच्छा नमूना पेश किया ही, मृत्यु मरने की कला का भी आदर्श उपस्थित किया। धन्य हो ! मंगल हो ! कल्याण हो !

कल्याण मित्र,
स. ना. गो.

विपश्यना-साधना की आवश्यकता

—शरद कुमार साधक

आप जीना चाहते है। मैं जीना चाहता हूँ। हमारे आसपास के लोग जीना चाहते हैं। सुख-शांति से जीने और एक दूसरे को जिलाने में सहभागी बनाने वाली जीवन-पद्धति का नाम है— **विपश्यना**। विपश्यना से न केवल सम्यक् दृष्टि उपलब्ध होती है, वरन् सम्यक् आचरण भी सधता है।

जीवन में तीन तत्त्वों की प्रधानता है : जिन्हें बल, गुण और भाव कहा जाता है। बल की आकांक्षा रखने वाले सामान्यतः भौतिक जीवन जीते हैं। गुण के उपासक नैतिक जीवन जीते हैं। भाव की आराधना करने वाले आध्यात्मिक जीवन जीते हैं। इन तीनों में समन्वय का अभाव होने के कारण ही सामाजिक जीवन में विसं-गतियाँ हैं। उन विसंगतियों का निराकरण एवं सुसंगतियों का समायोजन अन्तर्प्रज्ञा की जागृति से संभव है, क्योंकि **विपश्यना**

की साधना से प्रज्ञाचक्षु खुल जाते हैं और तब व्यक्ति अपने बल, गुण व भावों को परखनें की पात्रता प्राप्त कर लेता है।

वाराणसी में एक बार विपश्यना शिविर के प्रारंभ में विख्यात चिकित्सक डॉ. उडुप्पा ने शिविरार्थियों के हृदय, नाड़ी एवं रक्त-चाप का परीक्षण किया। फिर शिविरान्त में उस परीक्षण की पुनरावृत्ति की। तब यह देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि नाड़ी दौर्बल्य दूर करने, हृदय को स्वस्थ बनाने एवं रक्तचाप को सम करने में **विपश्यना का व्यावहारिक उपयोग है।** डॉ. नारायण वारंदानी ने अन्यत्र विपश्यना में दिलचस्पी लेने वालों की जाँच की तो पाया कि **साधना में रुचि लेने वालों की नाड़ी की धड़कन साधना के बाद कम हुई और रक्त शर्करा का भी नियमन हुआ।**

शरीर को साधने के लिए विपश्यना की साधना करने वाले अपनी चर्या नियत करते हैं। ब्राह्ममुहूर्त में उठना, ध्यान करना, सात्विक आहार लेना, मौन रखना, ब्रह्मचर्य का पालन करना और व्यसनों से बचना साधना के तहत आवश्यक है। पढ़ना लिखना, रेडियो सुनना, टी. वी. देखना आदि बंद होने से कभी-कभी अटपटापन लगता है, लेकिन फिर सांस के आने जाने पर ध्यान केन्द्रित होने से संवेदनाएँ स्पष्ट होने लगती हैं।

संवेदनाएँ सुखद भी हैं, दुःखद भी। दुखद संवेदनाओं से द्वेष पैदा होता है। सुखद संवेदओं से राग। **विपश्यना के कारण इन दोनों संवेदनाओं से अलग होकर यह स्पष्ट अनुभव किया जा सकता है कि हम सुख-दुःखों के साक्षी हैं।** सुख-दुःखात्म प्रतिक्रियाओं से अलग रहने की क्षमता ही जीवन में गुणात्मक परिवर्तन ला देती है। इसीलिए **मानसिक रोगों से आक्रांत जन भी विपश्यना से लाभान्वित होते हैं।** सुख-दुःख एवं अनुकूलता-प्रतिकूलता में समत्त्व सध जाय, तब नैतिक जीवन अप्रभावी नहीं रह सकता।

व्यक्ति को नैतिक बनाने का कार्य धर्म ने किया। धर्माचार्यों ने बुरी आदतें छुड़ाने के लिए आचार-संहिता दी। लेकिन धर्मों के बाह्य क्रिया कांडों एवं सांप्रदायिक अभिनिवेशों से जनता ऊब गयी। ऐसी हालत में समाज सुधारक, डॉक्टर, वैज्ञानिक आदि मिलकर यह प्रयास करने लगे कि व्यक्ति को नैतिक कैसे रखा जाय? अनैतिकता से बचाने के उपाय खोजे जाने लगे। शराबियों को रोगी मानकर डॉक्टरों ने चिकित्सा की। बच्चों एवं महिलाओं के भविष्य को संवारने के लिए शराब की बोतलें फुड़वाने का अभियान समाज-सुधारकों ने चलाया। वैज्ञानिकों ने शराब की लत छुड़ाने के लिए वैकल्पिक पेय खोजा। मर्ज बढ़ता रहा, ज्यों-ज्यों दवा की। अन्ततः भावात्मक रूपान्तरण करने की प्रक्रिया विपश्यना ने सुलभ की। **इससे कायानुपश्यना वेदनानुपश्यना चित्तानुपश्यना एवं धर्मानुपश्यना का समवेत दर्शन स्पष्ट हुआ।**

हम पुरुषार्थ प्रिय हैं। पुरुषार्थ की सीमा भौतिक जगत् तक सीमित है।

हमें पुरुषार्थ करने में आनन्द या अनानन्द होता है। आनन्द अनानन्द की पहुँच स्नायविक जगत् तक है, जिससे हित-अहित, लाभ-हानि, सुख दुःख की प्रतीति होती है।

जब तक हम इन दो भूमिकाओं में हैं, तब तक हमारी हर क्रिया सत् ही होगी, यह आवश्यक नहीं है। उसमें असत् का मिश्रण संभव है, क्योंकि शारीरिक मर्यादाएँ एवं चित्त की मलीनता ज्यों की त्यों रहती है। लेकिन जब पुरुषार्थ भावना के साथ एकाकार हो जाता है, तब पुरुषार्थी रूपान्तरित होकर विभूतिमत्व प्राप्त कर लेता है। इसे बौद्ध शब्दावली में बुद्ध, जैन शब्दावली में जिन, वैदिक शब्दावली में स्थितप्रज्ञ कहते हैं।

बुद्ध, जिन या स्थितप्रज्ञ की इन्द्रियाँ यथावत कार्य करती है, किन्तु वे प्रज्ञा के निर्देशन में रहती हैं। ज्ञान तन्तु उनकी बात मानते हैं। इसलिए शील व समाधि, शक्ति व चेतना की समन्विति उनकी चर्या में फलित होती है। तब वे किसी पर क्रोध करे भी तो कैसे? श्री विट्ठलदास मोदी ने कल्याण मित्र श्री सत्यनारायण गोयनकाजी के सान्निध्य में लगभग इसी तरह की अनुभूति की और लिखा कि "विपश्यना साधना का मन पर क्या प्रभाव पड़ा, इसके नाप-जोख का उपाय मेरे पास नहीं है। लेकिन मेरी पुत्र-वधू का यह मानना है कि विपश्यना शिविर के बाद मेरा क्रोध कम हो गया है। मैंने भी जाना है कि मेरा क्रोध मेरी पत्नी को कितना कष्टकारक रहा होगा।"

विपश्यना साधना के दस दिवसीय शिविर देश में जहाँ तहाँ होते हैं। इन शिविरों में डाक्टर, वकील, व्यापारी, विद्यार्थी, पण्डित, पादरी, संन्यासी आदि भाग लेते हैं। सबको प्रारम्भ में बताया जाता है कि इन्द्रियाँ, संवेदनाएँ, मन, बुद्धि, अहंकार आदि से हम किस प्रकार प्रभावित होते हैं। और उन प्रभावों से बचने की विधि क्या है? व्यक्ति की पात्रता एवं आवश्यकता के अनुसार विधि क्षेत्र के विभिन्न आयाम हो सकते हैं। लेकिन प्रारम्भ **आनापान** से होता है, इसमें हम नाक से साँस लेते हैं और छोड़ते हैं। नाक से ली जाने वाली वायु ठंडी होती है और छोड़ी जाने वाली वायु गरम होती है। साँस की स्पर्शना ओठ के ऊपरी भाग में होती है और उससे रोमावली लहराती है। इस प्रकार तीन दिन की आनापान क्रिया से **मन को एक स्थान पर एक क्रिया में केन्द्रित करना आ जाता है।** तब विपश्यना शुरू होती है।

विपश्यना का अर्थ है-विशेष विधि से देखना। मन को देखना, संवेदनाओं को देखना, स्फुरण को देखना, कंपन को देखना, सुख-दुःख भरी स्मृतियों को देखना। केवल देखते रहना। यह प्रक्रिया कोई आसान नहीं है। साधना की मुद्रा में बैठने, आसन लगाने और इस तरह केवल देखते रहने से शरीर में जगह-जगह टूटन होने लगती है, जी मिचलाने लगता है या अन्य नाना उपसर्ग होने लगते हैं। क्योंकि शरीर की भाँति मन के भी तत्त्वों के विलोड़न से यह सब होता है। **इस होते रहने को साक्षी भाव से देखने की क्षमता सध जाय तो विकार क्षीण हो जायेंगे।**

जब हम तनाव में रहते हैं तो हमारी वाणी, हमारे कान, हमारी आँखें, हमारी गति, हमारी मति, हमारी शक्ति सबमें असहजता आ जाती है। असहज होते ही क्रोधी अनर्थ कर बैठता है, अभिमानी अनर्थ कर बैठता है। जब विपश्यना से असहज को देखना सध जाता है, तब स्वतः प्रश्न उठता है कि क्रोध आने का कारण क्या है? दिमाग गरम न हो, दिल में बेचैनी न बढ़े, आँखें लाल न हों, भवों पर बल न पड़े, सांसों की गति अस्वाभाविक न हो और वाणी अमर्यादित न हो तो क्रोध का शमन स्वतः हो जायगा ऐसे ही अभिमान, लोभ या अन्यान्य वृत्तियों के बारे में देखना

समझना संभव हो जाय तो **सामाजिक सम्बन्धों में कटुता आने के अनेक कारण समाप्त हो जायेंगे।** समस्याओं के समाधान की कुंजी अपने हाथ में आते ही **व्यक्ति का भी रूपांतरण और समष्टि का भी रूपांतरण होने लगता है।** असहज से सहज, अशांत से शांत, अस्वस्थ से स्वस्थ एवं चंचल से अचंचल बनने की ऐसी विधि किसे प्रिय नहीं होगी? यह विधि अर्न्तमंथन से संबद्ध होने के कारण जब व्यक्ति का विचार और व्यवहार बदल जाता है, तब बदलने वाला स्वयं भी आश्चर्य करने लगता है कि वह इतनी आसानी से बदला तो कैसे बदला?

विचार और व्यवहार का पवित्रणीकरण व्यक्ति को आध्यात्म की भाव भूमि में प्रतिष्ठित कर देता है। इसलिए विपश्यना स्वयं आध्यात्म है। इस आध्यात्म में संप्रदाय या सिद्धान्त, गुरु या ग्रंथ की प्रतिबद्धता नहीं है। हर व्यक्ति अप आपने अध्ययन एवं अपने अन्तःकरण की पवित्रता के तहत इसे आत्मसात कर सकता है। आध्यात्म की अनुपलब्धि के व्यक्तिगत कारण हैं: प्रमाद, कषाय, असंयम; सामाजिक कारण हैं: जाति-पाँति, मालिक-मजदूर, भेद-अभेद; धार्मिक कारण हैं: ग्रंथ, पंथ कर्मकांड। विपश्यना से ये सारे कारण अपनी अस्मिता खो देते हैं और व्यक्ति अपनी अस्मिता को उपलब्ध कर लेता है। इसलिए सर्वोदय इसका अभिप्रेत है, साधना इसकी सहचारिणी है और संवाद इसका साधन है,। संवाद से बल, गुण एवं भावना के जनून में रहने वाले सन्निकट आते हैं, सुमति पाते हैं। जहाँ सुमति तहँ संपति नाना, जहां कुमति तहं विपति निदाना।

समाज में सदाचार, संस्कृति में आदर्श, सभ्यता में सद्व्यवहार और व्यक्ति में स्वस्थता बरकरार रखने की दृष्टि से विपश्यना का सार्वत्रिक महत्त्व है। यह कुमति मिटाने एवं सुमति लाने की **सहज साधना है।** इसमें केवल दर्शन या चिंतन ही नहीं है, वरन् जीवन को सुसंवादी बनाने का सामर्थ्य है।

(आचार्यकुल, डी–५३/५१, बी गुरुबाग, वाराणसी–२२१०१०)

शिविर कार्यक्रम में भूल सुधार:

दिल्ली: पू. गुरूजी के सार्वजनिक प्रवचन: नवम्बर १०, ११
श्री त्रिलोकचन्द्र जैन, फोन - ७१२७०००, ७१२६०००

दोहे धरम के

प्रज्ञा शील समाधि का, मिले धरम आलोक।
सुधर जाय यह लोक भी, सुधर जाय परलोक॥

शुद्ध धरम का पथ मिले, चढ़े चित्त में चाव।
जन जन के कल्याण हित, जागे मंगल भाव॥

मिले धरम पथ तो कटे, करम पाप के घोर।
कदम कदम चलते हुए, बढ़े मुक्ति की ओर॥

जिस पथ अपना हित सधे, जन जन हित भी होय।
वह पथ मंगल मुक्ति पथ, शुद्ध धरम पथ सोय॥

अपना भी मंगल सधे, मंगल सबका होय।
अपना भी हित सुख सधे, हित सुख सबका होय॥

शरण ग्रहण कर धरम की, करें निज चित्त अशोक।
वरण करे जो मरण को, गमन करे सुरलोक॥

दूहा धरम रा

धरम दान सब दान मँह, सिरै मोर ही होय।
सभी रसां मँह धरम रस, अतुलित हितकर होय॥

बड़ै भाग्य सूं धरम को, होवै पुण्य मिलाप।
करमां का बंधन कटै, धुलै पाप संताप॥

जीवण जीणै री कला, सुद्ध धरम री देन।
म्रित्यू मरणै री कला, सत्य धरम री देन॥

मंगलकारी धरम को, किसो'क प्रबल प्रभाव।
सकुसल परलै पार तक, पूगै जीवन नाव॥

मरण काल चेतो र वै, हुवै न चित्त मलीन।
तो मत्तै सद्गतिं हुवै, भव चक्कर ह्वै छीण॥

धन! जीवन मँह जग उठ्यो, सत्य धरम आलोक।
प्राण छूटतां ही पुग्यो, तुसित देव परलोक॥

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–११० ००७
की मंगल कामनाओं सहित

विपश्यना विशोधन विन्यास के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक: रामप्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२ ४०३. दूरभाष ८६
अश्विन पूर्णिमा * मुद्रण स्थान: विपश्यना प्रेस, धम्मगिरि, इगतपुरी. दूरभाष: ७६, १७६ * Oct. 87

वार्षिक शुल्क रु. १०/–
आजीवन शुल्क रु. १००/–

'विपश्यना' रजि, नं. 19156/71
पोस्टल रजि. नं. NS(M)16/87

Licence No. NS 18
to post without prepayment

प्रेषक:
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२ ४०३
(जि. नासिक, महाराष्ट्र, मध्यरेल्वे)